International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

'अपवित्र आख्यान' के जरिए मानव धर्म की स्थापना की कामना

डॉ० शकुंतला,
सहायक प्रोफेसर (हिंदी),
वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक

'अपवित्र आख्यान' प्रख्यात उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह के चर्चित उपन्यासों में से एक है। अमिताभ राय 'अपवित्र आख्यान' उपन्यास के संदर्भ में अपने समीक्षात्मक लेख में लिखते हैं– ''मुस्लिम समाज को बाह्य रूप से कथा का केन्द्र कहा जा सकता है। वह अपने तमाम अंतर्विरोधों के साथ यहाँ विद्यमान है। अंतर्विरोध के दो स्तर हैं– एक मुस्लिम समाज का अपना भीतरी अंतर्विरोध और दूसरा एक समाज के रूप में हिन्दू–मुस्लिम सम्प्रदाय का असामंजस्यपूर्ण रवैया। दूसरे स्तर पर अंतर्विरोध सघनतम हो गये हैं। इसका एक कारण तो साफ है कि इससे सामाजिक समरसता नहीं बन पायी है और इसका खामियाजा भारत जब–तब उठाता रहता है।''[1]

जहाँ एक ओर साम्प्रदायिक दंगों की विभीषिका देखकर मन विचलित हो जाता है, वहीं स्नेह–सद्भाव–सौहार्द के प्रसंगों से रू–ब–रू होकर मन आश्वस्त भी होता है कि सब कुछ खराब ही नहीं है। कहीं–न–कहीं कुछ ऐसा है जो देश–दुनिया–समाज–मानवता के हित में है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने अपने उपन्यास 'अपवित्र आख्यान' में देश में उठ रही साम्प्रदायिक लपटों के बीच जीवित सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों की कामना भी की है और ऐसे प्रसंगों का चित्रण पूरे मनोयोग से किया है। अब्दुल बिस्मिल्लाह उन चंद भारतीय लेखकों में शुमार हैं जिन्होंने देश की गंगा–जमुनी तहजीब को काफी करीब से देखा है और उसे अपने कथा साहित्य का विषय बनाया है। इसीलिए यह उपन्यास हिन्दू–मुस्लिम रिश्ते की मिठास और खटास के साथ समय की तिक्तताओं और विरोधाभासों का भी सूक्ष्म चित्रण करता है।

'अपवित्र आख्यान' का नायक जमील एक शिक्षित उदारमना मुसलमान है, जिसका संबंध ऐसी संस्कृति से है जहाँ संस्कार और भाषा के बीच धर्म कोई दीवार खड़ा नहीं करता। लेकिन शहर का सभ्य समाज उसे बार–बार यह अहसास दिलाता है कि वह मुसलमान है। उसकी सोच एवं व्यवहार को देखकर मुसलमान अक्सर उसे हिन्दू ठहराते हैं जबकि हिन्दुओं के लिए वह पहले ही मुसलमान है। हिन्दू उसके प्रेम व सद्भावना भरे आचरण की प्रशंसा जाने–अनजाने भले करते हैं, दूसरे कौम का होने के कारण उसे अपना नहीं मानते। मगर अपनों के बीच पराया व अकेला

[1] समीक्षा (पत्रिका), जनवरी–मार्च 2009, पृ० 44

होकर भी जमील टूटता नहीं है और न ही समझौता करता है बल्कि चुनौती को स्वीकारते हुए सामाजिक सोच एवं व्यवस्था में परिवर्तन की पुरजोर कोशिश करता है। दरअसल आदर्श और यथार्थ से युक्त उसका जीवन समाज के लिए अजनबी है। कुछ लोगों को उसकी बातें दार्शनिक या काल्पनिक लगती हैं तो कुछ को मात्र दिखावा। इनसे बेपरवाह जमील अपनी सोच के साथ बेहतर दुनिया के सपने देखता है जहाँ किसी प्रकार का कोई भेदभाव न हो और सब साथ मिलकर रहें। इस दुनिया में सिर्फ इनसान हों, हिन्दू या मुस्लिम नहीं।

मुसलमान होकर भी जमील ने हिन्दी और संस्कृत की पढ़ाई की है। हिन्दी उसने शौक के लिए नहीं पढ़ी है। हिन्दी में उसकी आत्मा बसती है। बचपन में उसके वालिद ने छठी कक्षा में और बी०ए० में संस्कृत के अध्यापक ने संस्कृत पढ़ने से मना किया था लेकिन अपनी जिद के आगे उसने किसी की न सुनी। गाँव में अखण्ड रामायण के आयोजन में मानस का पाठ करने पर पंडित का जोरदार तमाचा भी उसे विचलित नहीं कर सका। जमील ने हिन्दी में एम०ए०, पीएच०डी० की। लेकिन इसके बावजूद भी उसे नौकरी पाने के लिए दर–दर भटकना पड़ता है। प्रत्येक साक्षात्कार में उससे सवाल पूछा जाता कि आपने मुसलमान होते हुए भी हिन्दी में एम०ए० क्यों किया? आपको तो उर्दू या फारसी पढ़नी चाहिए थी। लंबी कशमकश के बाद अंततः एक मुस्लिम कॉलेज में उसे नौकरी मिलती है जहाँ 'हिन्दी का मुसलमान टीचर' या 'पंडित जी' संबोधन उसे ठेस पहुँचाते हैं। यह सबकुछ झेलते हुए उसे ख्याल आता है– 'क्यों पढ़ रहा है हिन्दी? हिन्दूओं को चूतिया बनाने के लिए' या 'मुसलमान होकर हिन्दी पढ़ना क्या जुर्म है?'

गौरतलब है कि बचपन में जो बात जमील का कोमल मन नहीं जान सका था कि भाषा के भी अपने धर्म होते हैं या धर्मों की अपनी खास भाषाएं होती हैं? वह उसने सार्वजनिक जीवन में मिले कठोर अनुभवों से न केवल जानी बल्कि उस पर अमल भी किया– ''भाषा चाहे कोई भी हो, धर्म से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। भाषा उसी की है जो उसका व्यवहार करे।''[2] अतः जमील के इस वक्तव्य के माध्यम से लेखक भाषा के आधार पर पनपने वाली साम्प्रदायिकता का विरोध कर यह स्पष्ट करता है कि भाषा पर किसी वर्ग/सम्प्रदाय विशेष का कोई हक नहीं होता है। अतः लेखक भाषा को साम्प्रदायिकता का आधार न मानकर, जमील का उदाहरण प्रस्तुत भाषा को सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों बनाने की कड़ी के रूप में प्रस्तुत करता है।

कॉलेज में अध्यापक वर्ग जिनमें हिन्दू–मुस्लिम के संदर्भ में परस्पर दिलों में ईर्ष्या व द्वेष पनप चुका है। जो कॉलेज के विभिन्न अध्यापकों द्वारा कहे गए कथनों से स्पष्ट हो जाता है,

[2] अब्दुल बिस्मिल्लाह, अपवित्र आख्यान, पृ० 90

यथाः– अर्थशास्त्र के अध्यापक सिद्दकी साहग की राय में ''हिन्दू साले वैसे तो सवर्ण–अवर्ण की बात करते हैं, मगर जब मुसलमान सामने आता है तो उसके खिलाफ एक हो जाते हैं।'' अब्दुस्सलाम नादां हिन्दुओं को इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन बताते हैं– ''हिन्दुओं को मुसलमान लोग सिर्फ काफिर समझते हैं; मगर असल में वो काफिर भी हैं, मुशरिक भी, मुन्किर भी और मुनाफिक भी। बल्कि यही, मुन्किर भी और मुनाफिक भी। बल्कि यूँ कहा जाए कि ज्यादातर हिन्दू मुनाफिक ही हैं। जो जब अपने लोगों के बीच होते हैं तो मुसलमानों की खूब बुराई करते हैं मगर जैसे ही मजलिस में कोई मुसलमान आ जाता है, उनकी बातचीत का रुख बदल जाता है। वो मुसलमान की तारीफें शुरू कर देते हैं। अल्लाह तआला ने ऐसे लोगों को बहुत खतरनाक बताया है और इस्लाम ने तो साफ–साफ मुनासिफों को अपना सबसे बड़ा दुश्मन माना है।'' विभा अहमद के अनुसार हिन्दू धर्म में इतनी बुराइयाँ थीं कि उसक मजबूरन अपना धर्म बदलना पड़ा और मजहबे–इस्लाम को कबूल कर उसने एक मुसलमान युवक से शादी कर ली। वह कहती है कि ''मेरी दिली ख्वाहिश थी कि मुस्लिम परिवार और समाज में रहकर इस्लाम की गहराई को समझूं और दीन की नेक राह पर चल सकूं।'' भूगोल के अध्यापक चंद्रशेखर का कहना था– ''ये हिन्दू–मुसलमान का लफड़ा की बेकार है। आए दिन दंगा–फसाद, मारकाट, जवान लड़कियों–औरतों से दुर्व्यवहार . . . एक देश में एक ही कौम हो तो ज्यादा अच्छा। मैं तो कहता हूँ– ''आवश्यक नहीं कि आप मुझसे सहमत हों; औरंगजेब सही आदमी था। उसी तरह की नीति आजादी के बाद अपनाई जानी थी।'' जबकि कॉलेज के प्रिंसीपल का मानना था कि ''अगर हिन्दू–मुसलमान बराबर–बराबर हो जायें तो सारी पॉलिटिक्स भीतर घुस जाये। कहीं मुसलमान माइनर्टी में हैं, कहीं हिन्दू। इस मुल्क की सबसे बड़ी ट्रेजेडी यही है, जिसे किसी ने नहीं समझा।'' उक्त विवेचन से लेखक स्पष्ट करता है कि सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना में कितने परिवर्तन देखने को मिलते हैं। जो साम्प्रदायिकता को फलने–फूलने के लिए उचित वातावरण तैयार करते हैं। लेकिन साथ–साथ प्रिसीपल के कथन के माध्यम से इस दिशा में सुझाव भी प्रस्तुत करता है। जिससे की पूरे मुल्क में साम्प्रदायिक सद्भावपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो सकें।

ऐसे अनेक प्रसंगों को उपन्यासकार ने अपनी रचना में प्रस्तुत किया है, यथाः– ट्रेन के प्रसंग को ही ले लें। जब एक बुजुर्ग मुसलमान का नमाज पढ़ने का समय होता है और वह जमील को सम्बोधित करते हुए कहता है कि बेटा इन लोगों से कहो कि ''ये थोड़ी देर के लिए इधर आकर बैठ जाएँ तो मैं उधर बैठकर नमाज़ पढ़ लूँ। नमाज़ में रुख़ काबे की तरफ़ हो तो ठीक

रहता है।''[3] लेकिन जब जमील ने सामने बैठे युवकों से अनुरोध किया तो वे भड़क उठे और उनमें से एक युवक ने बुरा–सा मुँह बनाते हुए कहा कि ''नमाज़ पढ़ना है तो किसी मस्जिद में जाएँ, यह ट्रेन है।''[4] लेकिन उस बुजुर्ग की पास की सीट पर बैठे पति–पत्नी खड़े हो गए और उन्होंन अपनी सीटों के पिछले भागों को गिराकर 'बेड' बना दिया था। इतना ही नहीं पति ने अपने तिलक–लगे मस्तक को दूसरी ओर कर लिया था। ऐसा देखकर बुजुर्ग की आँखें छलछला आई। और इस प्रकार उस बुजुर्ग ने एक हिन्दू दम्पत्ति की मदद से अपनी नमाज़ पूरी की।

उस हिन्दू दम्पत्ति से जमील द्वारा यह पूछे जाने पर कि आपके हृदय में किसी दूसरे धर्मावलम्बी के धार्मिक मामले में जो आदर भाव मैंने अभी देखा, उसकी प्रेरणा आपको कैसे मिली? तो जमील को उत्तर देते हुए पति कहता है कि ''दूसरा धर्म कैसा बेटा, ईश्वर का धर्म तो एक ही है और वह है मानवता का धर्म। ये जो हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि धर्म दिखाई पड़ते हैं, ये सब हम मनुष्यों के बनाए हुए हैं . . .''[5] इतना ही नहीं उपन्यासकार उस दम्पत्ति के माध्यम से यह भी बताता है कि भले ही आज मनुष्य ने अपने आप को अनेक धर्मों में बाँट लिया हो। लेकिन मनुष्य का मूल रूप से एक ही धर्म है। वह है– मानव धर्म। जो कभी भी समाप्त नहीं हो सकता। मनुष्य ने चाहे कितने ही धर्म–सम्प्रदाय क्यों न बना लिए हों, लेकिन आज भी उनमें सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध हैं।

जमील के प्रश्न का जवाब देते हुए वह आगे कहता है कि ''रही प्रेरणा की बात, तो तुम्हारा सोचना ठीक है। इसे प्रेरणा ही समझना चाहिए। क्योंकि पहले मैं भी मुसलमानों के बारे में कुछ दूसरी ही राय रखता था, लेकिन एक घटना ने मेरी राय बदल दी। हुआ यूँ कि एक बार इसी प्रकार की एक ट्रेन–यात्रा में मेरी भेंट एक मुसलमान भाई से हो गई। और उनके साथ जो बातचीत हुई, उससे न जाने क्यों उनके प्रति मुझे आत्मीयता–सी हो गई। वे अजमेर के कोई व्यापारी थे। उनका नाम था नज़ीर मुहम्मद। खैर . . . अन्त में हम दोनों ने एक–दूसरे को अपने पते दिए, ताकि वक़्त–ज़रूरत पत्र–व्यवहार किया जा सके।''

''और संयोग देखो, कि सर्वप्रथम मुझे ही जरूरत पड़ गई। दरअसल हमने अजमेर के ख़्वाजा साहब की दरगाह में एक मन्नत माँगी थी, जिसे उतारने के लिए वहाँ जाना था। और तुम तो जानते हो कि उर्स के मौके पर अजमेर में कितनी भीड़–भाड़ होती है। देश–भर के लोग वहाँ

[3] अब्दुल बिस्मिल्लाह, अपवित्र आख्यान, पृ० 121
[4] वही, पृ० 121
[5] वही, पृ० 122

पहुँचते हैं। क्या शहर और क्या गाँव। पाकिस्तान तक के लोग आते हैं। ऐसे में होटलों आदि में बड़ी मुश्किल से जगह मिलती है।''

''अतः मैंने नज़ीर साहब को लिखा कि यदि सम्भव हो तो किसी सस्ते–से होटल में हमारे रहने का प्रबन्ध करा दें। उनका जबाव आया, कि मेरे रहते हुए आप किसी होटल में क्यों रुकेंगे? सीधे घर चले आइए, यहाँ सारा इन्तज़ाम हो जाएगा। मेरी श्रीमती जी तो घबराईं कि एक मुसलमान परिवार में हम कैसे रहेंगे? मगर मैंने कहा, ईश्वर का नाम लेकर चलो; फिर जैसा होगा देखा जाएगा।''

''मगर जब हम वहाँ पहुँचे तो यह देखकर चकित रह गए कि नज़ीर साहब ने हमारे लिए एक अलग की कमरा ख़ाली करा दिया था। अच्छी तरह से उस कमरे की साफ़–सफ़ाई भी कराई गई थी। यही नहीं, हमारे भोजन आदि का प्रबन्ध करने के लिए उन्होंने एक महराज को भी नियुक्त कर रखा था। उस कमरे में हमारे डेरा डालने के थोड़ी देर बाद महराज अपने घर से स्टोव और कुछ बर्तन ले आया। आते ही भोजन के बारे में पूछा, कि क्या खाएँगे? नज़ीर साहब के घर में हमारा आतिथ्य इस प्रकार से होगा, इसकी तो हमने कल्पना भी नहीं की थी।''

''वहाँ हम तीन दिन ठहरे। पहले ख़्वाजा साहब की दरगाह पर जाकर अपनी मन्नत उतारी, फिर हम पुष्कर चले गए। वहाँ से लौटकर आए तो स्वयं नज़ीर साहब ने हमें शहर घुमाया। हमने 'ढाई दिन का झोंपड़ा' नाम से प्रसिद्ध मस्जिद देखी। फिर वे हमें अनासागर लेकर गए। इस बीच उनके परिवार की स्त्रियों और बच्चों से भी ख़ूब आत्मीयता हो गई।''

''एक बात बताना तो भूल ही गए,'' उनकी पत्नी ने अपने पति को टोका, ''जब हमने नज़ीर भाई साहब से पूछा कि इस कमरे में क्या हम अपना पूजा–पाठ कर सकते हैं, तो उन्होंने बेझिझक कहा, क्यों नहीं, शौक से कीजिए। फिर तो हमने पूजा–पाठ भी किया और उनके परिवारवालों को प्रसाद भी दिया। उन्होंने ख़ुशी–ख़ुशी भगवान का प्रसाद ग्रहण किया।''[6]

उपन्यासकार द्वारा कथा के बीच में इस प्रकार के प्रसंग डालने के पीछे उसका मानव धर्म ही है। जो इस प्रकार के नाजुक हालात में भी ऐसे रिश्तों को दर्शाता है। इस तनावपूर्ण से सभी परेशान हैं। हिन्दू हो या मुस्लिम सभी यही चाहते हैं कि सब मिल–जुलकर रहें। ताकि मुल्क में शांति बनी रहे। देश की अवाम की इस दिली इच्छा को लेखक जनाब अब्दुस्सलाम 'नादाँ' के जमील के नाम लिखे गए पत्र के माध्यम से प्रस्तुत करता है। जिसमें अब्दुस्सलाम लिखते हैं कि

[6] अब्दुल बिस्मिल्लाह, अपवित्र आख्यान, पृ० 122–123

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

''इस मुल्क में हिन्दू–मुसलमान सब मिल–जुलकर रहें, यह भला कौन नहीं चाहता!''[7] और यह मानव धर्म की मिसाल को ही तो दर्शाता है कि जमील मुसलमान होते हुए भी हिन्दू परिवार में शादी समारोह में शामिल होता है। लेखक भी यही कामना करता है कि यह मानव धर्म यों ही बना रहे।

[7] वही, पृ० 166